International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(3): 127-129
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 23-03-2017
Accepted: 24-04-2017

डॉ0 अशोक कुमार दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, बी0 एस0 एन0 वी0 महाविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

रस–स्वरूप और सिद्धान्त

डॉ0 अशोक कुमार दुबे

सारांश
दृश्य काव्य के तीन भेदों में अन्तिम भेद रस है। रस की व्यञ्जना करना, सामाजिकों के हृदय में रसोद्वेग उत्पन्न करना दृश्यकाव्य का प्रमुख लक्ष्य है। 'नाट्यशास्त्र' के रचयिता आचार्य भरत के अनुसार विभाव अनुभाव तथा सञ्चारी भाव के संयोग रस की निष्पत्ति होती है– विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।[1]

मूल शब्दः रस–स्वरूप, सिद्धान्त

प्रस्तावना

काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट के अनुसार, लोक में रत्याादि रूप स्थायिभााव के जो कारण, कार्य एवं सहकारी होते हैं वे यदि नाटक या काव्य में प्रयुक्त होते हैं तो क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी भाव होते है। विभाव आदि से व्यक्त वह रत्यादि स्थायी भाव 'रस' कहलाता है।[2] इनमें से रति आदि के कारण का नाम 'विभाव' है। रति आदि के कारण दो प्रकार के होते हैं– एक आलम्बन रूप और दूसरा उद्दीपन रूप। सीता, राम आदि एक दूसरे की प्रीति के आलम्बन रूप कारण होते हैं, क्योंकि सीता को देखकर राम के मन में और राम को देखकर सीता के मन में रति की उत्पत्ति होती है।

इस रति को उत्पन्न करने वाले तत्व चांदनी, उद्यान, नदीतीर आदि उद्दीपन विभाव कहलाते हैं, क्योंकि वे पूर्वोत्पन्न रति आदि को उद्दीप्त करने वाले हैं। इस प्रकार आलम्बन और उद्दीपन दोनों मिलकर स्थायिभाव को व्यक्त करते हैं।

रस की प्रक्रिया में विभाव के दो भेद–आलम्बन और उद्दीपन रस के वाहय कारण है। रसानुभूति का आन्तरिक और मुख्य कारण स्थायिभाव है। स्थायिभाव मन के अन्दर रहने वाला प्रसुप्त संस्कार है जो अनुकूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्बोधक सामग्री को प्राप्त कर अभिव्यक्त हो उठता है और हृदय में एक अपूर्व आनन्द का संचार कर देता है। इस स्थायिभाव की अभिव्यक्ति ही रसास्वादजनक होने से रस शब्द से व्यक्त होती है। इसलिए 'व्यक्तः स तैर्विभावद्यैः स्थायिभावो रसः स्मृतः' कहा गया है। अर्थात् इन विभाव अनुभाव तथा व्याभिचारिभावों के संयोग से व्यक्त होने वाले स्थायिभाव रस कहलाता है।[3]

उद्देश्य

व्यवहारिक दशा में मनुष्य को जिस–जिस प्रकार की अनुभूति होती है वे आठ प्रकार के स्थायिभाव साहित्यशास्त्र में माने गये हैं। काव्य प्रकाशकार ने उनकी गणना इस प्रकार की है–

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहो भयं तथा। जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः।[4] अर्थात् रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा या घृणा और विस्मय ये आठ स्थायीभाव कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त निर्वेद भी नौवां स्थायीभाव माना गया है– निर्वेदस्थायिभावो•स्ति शान्तो•पि नवमो रसः।[5]

इस प्रकार नौ स्थायिभाव और उनके अनुसार ही श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नीरस माने गये हैं।

रसानुभूति के कारणों को विभाव कहते हैं। वे दो प्रकार के होते है–आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव। जिसको आलम्बन करके रस की उत्पत्ति होती है, उसे आलम्बन विभाव कहते हैं। जैसे सीता को देखकर राम के मन में और राम को देखकर सीता के मन में रति की उत्पत्ति होती है और उन दोनों को देखकर सामाजिक को रसानुभूति होती है।

Correspondence
डॉ0 अशोक कुमार दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, बी0 एस0 एन0 वी0 महाविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

ये सीता, राम आदि श्रृंगार रस के 'आलम्बन विभाव' कहलाते हैं। चाँदनी, उद्यान, एकान्त स्थान आदि के द्वारा रति का उद्दीपन होता है, अतः ये उद्दीपन विभाव कहलाते हैं। प्रत्येक रस के आलम्बन तथा उद्दीपन–विभाव अलग–अलग होते हैं।
स्थायीभाव' रसानुभूति का प्रयोजक अन्तरंग या आभ्यन्तर कारण है। आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव उसके वाह्य कारण हैं, अनुभाव और व्याभिचारी भाव उस आन्तर रसानुभूति से उत्पन्न, उसकी बाह्यभिव्यक्ति के प्रयोजक शारीरिक तथा मानसिक व्यापार है। इनको रस का कारण, कार्य तथा सरकारी कहा जाता है। अपने–अपने आलम्बन या उद्दीपन कारणों से, सीता राम के भीतर उद्बुध रति आदि रूप स्थायीभाव को बाह्यरूप में जो प्रकाशित करता है। वह रत्यादि का कार्यरूप काव्य और नाट्य में 'अनुभाव' के नाम से कहा जाता है।[6] जो वाचिक या आंगिक अभिनय के द्वारा रत्यादि स्थायिभाव की आन्तर अभिव्यक्ति रूप अर्थ का बाह्य रूप में अनुभव कराता है उसको 'अनुभाव' कहते हैं।[7]
उद्बुद्ध हुए इन स्थायिभावों की पुष्टि तथा उपचय में जो उनके सहकारी हाते हैं। अर्थात् जो रसों में नाना रूप से विचरण करते हैं। और रसों को पुष्ट कर अस्वाद के योग्य बनाते हैं उनको व्याभिचारि भाव कहते हैं।[8]
रस निष्पत्ति का सर्वप्रथम उल्लेख भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है– विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। भरतमुनि के रस सूत्र में आये हुए 'निष्पत्ति' तथा 'संयोग' पदों को लेकर उत्तरवर्ती आचार्यों ने इसके चार अर्थ किये हैं– 'भट्टलोल्लट' निष्पत्ति का अर्थ 'उत्पत्ति' तथा संयोग पद का अर्थ 'उत्पाद्य–उत्पादक भाव' करते है। 'श्रीशङ्कुक' 'निष्पत्ति' का अर्थ 'मुक्ति' तथा 'संयोग' के अर्थ 'भाव्य–भावक भाव' कहते हैं। इसी प्रकार 'आचार्य अभिनव गुप्त' 'निष्पत्ति' का अर्थ 'अभिव्यक्ति' तथा 'सयोंग' पद का अर्थ 'व्यङ्ग्य–व्यञ्जक भाव' लेते हैं।

भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद

भरतसूत्र के व्याख्याकारों में मीमांसक भट्टलोलट 'उत्पत्तिवाद' के समर्थक हैं। उनके मत में विभाव, अनुभाव आदि के संयोग से अनुकार्य राम आदि में इसकी उत्पत्ति होती है। अतः स्थायीभाव के साथ विभावों का संयोग होने पर उत्पाद्य, उत्पादकभाव, अनुभावों के साथ संयोग होने पर गम्य–गमकभाव और व्यभिचारी भावों के साथ संयोग होने पर पोष्य–पोषकभाव सम्बन्ध होता है। इसीलिए इन्होंने जनितः, प्रतीतियोग्यः कृतः तथा उपचितः शब्दों का प्रयोग किया–

'विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपनकारणैः रत्यादिको भावो जनितः, अनुभावैः कटाक्षभुजाक्षेपप्रभृतिभिः कार्यैः प्रतीतियोग्यः कृतः। व्यभिचारिभिनिर्वेदादिभिः सहकारि–भिरूपचितों मुख्यया वृत्या रामादावनुकायै, तद्रपतानुसन्धानान्नर्त्तके•पि प्रतीयमानो रस इति भट्टलोल्लटप्रभृतयः।'

भद्दलोल्लट की इस व्याख्या में सबसे बड़ी कमी यह प्रतीत होती है कि उसमें मुख्यरूप से अनुकार्य तथा गौणरूप से नट में तो रस की उत्पत्ति, अभिव्यक्ति और पुष्टि आदि मानी गयी है, परन्तु सामाजिक को रसानुभूति क्यों होती है, इस समस्या पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। दूसरी बात यह है कि अनुकार्य सीता राम आदि तो अब इस जगत में हैं नहीं। अतः इस समय किये जाने वाले अभिनय से उनसे रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। यही इस व्याख्या के दो मुख्य दोष हैं।

श्री शङकुक का अनुमितिवाद

न्याय–मतानुयायी श्री शङकुक ने सामाजिक के साथ रस का सम्बन्ध दिखलाने का प्रयत्न किया है। इसमें नट कृत्रिमरूप से अनुभाव आदि का प्रकाशन करता है परन्तु उनके सौन्दर्य के बल से उनमें वास्तविकता सी प्रतीत होती है। उन कृत्रिम अनुभाव आदि को देखकर सामाजिक नट में वस्तुतः विद्यमान न होने पर भी उसमें रस का अनुमान कर लेता है और अपनी वासना के वशीभूत होकर उस अनुमीयमान रस का आस्वादन करता है। श्रीशङकुक ने नट में रस को अनुमेय माना है। नट में चित्रतुरंग–न्याय से रस की अनुमति होती है। जैसे घोड़े के चित्र को देखकर 'यह घोड़ा है' इस प्रकार का व्यवहार होता है, परन्तु इस प्रतीति को न सत्य, न मिथ्या, न संशय और न ही सादृश्य प्रतीति रूप ही माना जा सकता है। चित्रस्थ–तुरंग में होने वाली बुद्धि इन चारों प्रकार की कोटियों से भिन्न होती है। इसी प्रकार जो नट में राम बुद्धि होती है वह सम्यक् मिथ्या, संशय तथा सादृश्य इन चारों प्रकार की प्रतीतियों से विलक्षण होती है।

भट्टनायक का मुक्तिवाद

रस की 'निष्पत्ति' न अनुकार्य राम आदि में होती हैं और न अनुकर्ता नट आदि में। अनुकार्य और अनुकर्ता दोनों तटस्थ हैं, उदासीन हैं। उनको रसानुभूति नहीं होती है। वास्तविक रसानुभूति सामाजिक में होती है। भट्टलोलट का सिद्धान्त समीचीन नहीं है। श्रीशंकुक ने 'तटस्थ' नट में रस की 'अनुमिति' मानी जाती हैं और उसके द्वारा संस्कारवश सामाजिक की रस–चवर्णा का उत्पादन करने का प्रयत्न किया है। परन्तु 'अनुमिति' तो केवल परोक्ष–ज्ञानरूप होती है। साक्षात्कारात्मक रसानुभूति की समस्या उसके द्वारा हल नहीं हो सकती है। इसीलिए यह सिद्धान्त भी ठीक नहीं लगता है। आचार्य अभिनवगुप्त के मतानुसार में रस की 'अभिव्यक्ति' होती है। उन्होंने रस की स्थिति 'तटस्थ' राम या नट आदि में 'आत्मगत' अर्थात सामाजिकगत मानी है। सामाजिक में भी रस की 'उत्पत्ति' या 'अनुमति' न मानकर उसकी अभिव्यक्ति मानी जाती है। परन्तु भट्टनायक के मत में यह 'अभिव्यक्तिवाद' भी ठीक नहीं है क्योंकि अभिव्यक्ति सदा पूर्व से विद्यमान पदार्थों की ही होती है। रस–अनुभूतिस्वरूप है। अनुभूति काल से पहले या बाद में उसकी सत्ता नहीं होती रहती। 'अभिव्यक्ति' होने वाली वस्तु का अस्तित्व अभिव्यक्ति के पहले भी रहता है बाद में भी परन्तु रस की यह स्थिति नहीं है। इस प्रकार भट्टनायक ने 'उत्पत्तिवाद' 'अनुमितिवाद' और 'अभिव्यक्तिवाद' तीनों का खण्डन करके अपने मुक्तिवाद की स्थापना की। भट्टनायक ने अपने 'मुक्तिवाद' की स्थापना करने के लिए शब्द में स्वीकृत अभिधा और लक्षण से काव्य का जो अर्थ उपस्थिति होता है, उसको शब्द का 'भावकत्व' व्यापार परिष्कृत कर सामाजिक के उपभोग के योग्य बना देता है।
काव्य से जो अर्थ अभिधा द्वारा उपस्थित होता है वह एक विशेष नायक और विशेष नायिका की प्रेमकथा के रूप में व्यक्ति विशेष से सम्बद्ध होता है। शब्द का 'भावकत्व' व्यापार इस कथा में परिष्कार कर उसका 'साधारीकरण' कर देता है। साधारणीकरण की स्थिति में सामाजिक उस कथा के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। अपनी रूचि या संस्कार के अनुरूप वह उस कथा का पात्र स्वयं बन जाता है। इस प्रकार असली नायक–नायिका की जो स्थिति उस कथा में थी। 'साधारणीकरण' व्यापार के द्वारा सामाजिक को भी लगभग वही स्थान मिल जाता है। भट्टनायक के अनुसार इस 'भावकत्व' व्यापार के काव्यार्थ का 'साधारणीकरण' हो जाता है। तब शब्द का 'भोजकत्व' नामक तीसरा व्यापार सामाजिक को रस का साक्षात्कारात्मक योग करवाता है। यही भट्टनायक का 'भोजकत्व' सिद्धान्त है, जो 'मुक्तिवाद' कहलाता है। इस प्रकार भट्टनायक ने शब्द में अभिधा, लक्षणा आदि के अतिरिक्त 'भावकत्व' तथा 'भोजकत्व' नामक दो नवीन व्यापारों की कल्पना कर सामाजिक को रसानुभूति प्राप्त कराने का प्रयत्न किया है–

न ताटस्थ्येन नात्मगततत्वेन रसः
नोत्पद्यते, नाभिव्यज्यते अपितु काव्ये नाट्ये
चाभिधातो द्वितीयेन विभावादिसाधारणीकरणात्मना
भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानः स्थायी,
सत्रपोद्रेकप्रकाशानन्दमयमसंविद्विश्रान्तिसतत्वेन भोगेन भुज्यते' इति
भट्टनायकः।

भट्टनायक ने अपनी इस प्रक्रिया के द्वारा सामाजिकगत रसानुभूति का निरूपण अच्छी तरह से किया है, परन्तु 'भावकत्व' तथा भोजकत्व' नामक जिन दो नवीन व्यापारों की कल्पना की है वे अनुभवसिद्ध नहीं है और जिस स्थायिभाव का 'भोग' बतलाया है वह राम–सीतादिगत स्थायीभाव है या नटगत अथवा सामाजिकगत उसका भी स्पष्टीकरण नहीं हुआ है।[11]

अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद

आचार्य अभिनवगुप्त ने 'अभिव्यक्तिवाद की स्थापना की। उन्होंने सामाजिकगत स्थायिभाव को ही रसानुभूति का निमित्त माना है। मूल मनः संवेग अर्थात् वासना या संस्कार रूप में रति आदि स्थायिभाव सामाजिक की आत्मा में स्थित रहता है। वह साधारणीकृत रूप से उपस्थित विभावादि–सामग्री से अभिव्यक्तया उद्बुध हो जाता है तथा तन्मयीभाव के कारण वेद्यान्तर सम्पर्क से शून्य ब्रह्मास्वाद के सदृश परमानन्द रूप में अनुभूत होता है। यहाँ अभिनवगुप्त ने भट्टनायक की तरह 'भावकत्व' तथा 'भोजकत्व' रूप दो व्यापारों की कल्पना नहीं की है परन्तु 'भावकत्व' व्यापार के स्थान पर 'साधारणीकरण' व्यापार अभिधा तथा लक्षणा के साथ शब्द की 'व्यञ्जना नामक तृतीय वृत्ति अवश्य मानी है। इसके अनुसार भद्दनायक द्वारा जो 'भावकत्व' तथा 'भोजकत्व' रूप दो व्यापारों की कल्पना की गयी है, वह प्रामाणिक नहीं है इसलिए उसका भी निराकरण कर अभिनवगुप्त ने अपने 'अभिव्यक्तिवाद' में की है।

रस अलौकिकता की सिद्धि

अभिनवगुप्त ने रस को अलौकिक कहा है। लोक में पायी जाने वाली अनित्य वस्तुएं दो प्रकार की होती है। एक 'कार्य' रूप और दूसरी 'ज्ञाप्य' रूप। घट पट आदि 'कार्य' पदार्थ है। ये किसी न किसी कारण से उत्पन्न होते हैं इसलिए 'कार्य' कहलाते हैं और इनका जनक 'कारण' या कारक कहलाता है। दूसरे प्रकार से ये पदार्थ ज्ञान के 'विषय' या 'ज्ञाप्य होते हैं। जैसे दीपक के प्रकाश में घट का ज्ञान होता है इसलिए दीपक के द्वारा घट 'ज्ञाप्य' है और जो पदार्थ पूर्व सिद्ध नहीं है, कारण के व्यापार के बाद उसकी उत्पत्ति होती है वह 'कार्य' कहलाता है। संसार के सारे अनित्य पदार्थ 'कार्य' और 'ज्ञाप्य' दो वर्गों में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं। परन्तु रस को न 'कार्य' कहा जा सकता है और न 'ज्ञाप्य'। 'कार्य' तो इसलिए नहीं हो सकता है कि 'कार्य' अपने निमित्त का नाश हो जाने पर भी बना रहता है। यदि रस को 'कार्य' माना जाये तो उसके निमित्तकारण विभावादि ही होंगे। इसलिए विभावादिका नाश हो जाने के बाद भी उसकी प्रतीति होनी चाहिए। परन्तु विभावादि के नाश के बाद रस की प्रतीति नहीं होनी है। इसी अभिप्राय से आचार्य मम्मट ने रस को 'विभावादि–जीवितावधिः कहा है, इसलिए रस को 'कार्य' नहीं माना जा सकता है। यह 'ज्ञाप्य' भी नहीं है, क्योंकि 'ज्ञाप्य' पदार्थ ज्ञान होने के पहले भी विद्यमान रहता है और बाद में भी परन्तु रस की सत्ता न अनुभव से पूर्वकाल में रहती है और अनुभव के बाद। जब तक रस की अनुभूति होती है, तब तक ही उसकी सत्ता रहती है। इसलिए वह 'कार्य' तथा 'ज्ञाप्य' दोनों प्रकार के लौकिक पदार्थों से भिन्न है, अतः रस 'अलौकिक' है।[12]

प्रश्न उठता है कि जब रस न 'कार्य' है और न 'ज्ञाप्य' तो फिर वह विभावादि से व्यञ्जित होकर चर्वणीय कैसे हो सकता है। संसार में दो ही प्रकार के कारण होते हैं, एक 'कारक' दूसरे 'ज्ञापक'। जब रस 'कार्य' नहीं है तो उसका कोई 'कारक' हेतु नहीं हो सकता है। रस 'ज्ञाप्य' नहीं है इसलिए उसका 'ज्ञापक' हेतु भी नहीं हो सकता है। इन 'कारक' तथा 'ज्ञापक' हेतुओं के अतिरिक्त और तीसरा हेतु होना ही नहीं है, तो विभावादि रस के 'व्यञ्जक' कैसे हो सकते हैं। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं कि इसीलिए तो हम रस को 'अलौकिक' कहते हैं। लोक में जो 'कारक' तथा 'ज्ञापक' दो प्रकार के हेतु पाये जाते हैं, उनमें रस के 'व्यञ्जक' हेतु विभावादि, उन दोनों से विलक्षण अतएव 'अलौकिक' हैं इसीलिए यह अलौकिकत्वसिद्धि रस का भूषण है, दूषण नहीं।

रस का ग्रहण न 'सविकल्पक–ज्ञान से हो सकता है और न निर्विकल्पक–ज्ञान से, इसीलिए वह अलौकिक है। 'सविकल्पक–ज्ञान' उसको कहते है, जिसमें पदार्थ के स्वरूप के अतिरिक्त उसके नाम, उस जाति आदि का ज्ञान होता है– नामजात्यादियोजनासहितं ज्ञानं सविकल्पम्, जैसे घट–पट इत्यादि पदार्थों के ज्ञान में उनके स्वरूप के साथ वस्तु के नाम, जाति आदि का भी ज्ञान होता रहता है। इसलिए इसे 'सविकल्पक–ज्ञान' कहते है। वह शब्द व्यवहार का विषय नहीं है। इसलिए उसमें नामजात्यादि के ज्ञान का कोई अवसर नहीं है। अतः रस को सविकल्पक ज्ञान से ग्रहण नहीं कर सकते हैं। 'सविकल्पक–ज्ञान' कहलाता है।[13]

निष्कर्ष

रस की प्रतीति में विभावादि की प्रतीति भी होती रहती है इसलिए समूहा–लम्बनात्मक ज्ञान होने से निर्विकल्पक–ज्ञान भी उसका ग्राहक नहीं हो सकता है और न वह सविकल्पक का विषय होता है।[14] इसलिए रस इन दोनों से भिन्न अतएव अलौकिक है। मनुष्य की विभिन्न अनुभूति के अनुसार नाट्य में रस के आठ भेद माने गये हैं–

श्रृंगारहास्यकरूणरोद्रवीरभयानकाः। वीभत्साद् भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ
नाट्ये रसाः स्मृताः।[15]

इनके स्थायिभाव क्रमशः रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा या घृणा और विस्मय हैं। रति या काम न केवल मनुष्य जाति में अपितु सभी जातियों में मुख्य प्रवृत्ति के रूप में पाया जाता है और सबको उसके प्रति आकर्षण होता है इसलिए सबसे पहले श्रृंगार को स्थान दिया गया है। सम्भोग श्रृंगार में नायक नायिका का मिलन होता है इसमें एक दूसरे को अपेक्षा रहती है, जबकि विप्रलम्भ श्रृंगार में भी दोनों को मिलन की आशा रहती है। हास्य श्रृंगार का अनुगामी है, इसलिए श्रृंगार के बाद हास्य रस का स्थान दिया गया है। हास्य से विपरीत स्थिति करूण रस की है। इसलिए हास्य के बाद करूण रस को स्थान दिया गया है। अपने प्रियतम बन्धु के वास्तविक विनाश या भ्रमवश ही उसके विनाश का निश्चय हो जाने के बाद करूण रस की सीमा प्रारम्भ होती है, उसमें पुनर्मिलन की आशा नहीं रहती है। अतएव करूणरस नैराश्यमय होने से निरपेक्ष रस माना जाता हे। भवभूति ने 'तटस्थंनैराश्यात्' कहकर करूणरस से निराशात्मक स्वरूप को सूचित किया है।[16]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नाट्यशास्त्र–आचार्य भरत।
2. काव्य प्रकाश– आचार्य मम्मट।
3. काव्य प्रकाश– आचार्य विश्वेश्वर
4. साहित्यदर्पण– आचार्य विश्वनाथ
5. भवभूति के नाटक– डॉ0 ब्रज बल्लभ शर्मा।
6. उत्तररामचरितम्– भवभूति।
7. मालती माधवम्– भवभूति।
8. महावीर चरितम् –भवभूति।
9. कामसूत्र– वात्स्यायन।